खतरों से खेल कर किया गया तिब्बत का सर्वे

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ तक अंग्रेज़ों ने भारत के अधिकांश क्षेत्रों का सर्वेक्षण कार्य लगभग पूरा कर लिया था। परन्तु भारत के पश्चिमोत्तर भाग तथा तिब्बत अभी तक अछूते थे। इन क्षेत्रों में सर्वे करने में कई कठिनाइयां थीं। हिमालय के अधिकांश क्षेत्र दुर्गम थे तथा तिब्बत में तो अंग्रेज़ों का प्रवेश भी वर्जित था। परन्तु उनके विचार में इन क्षेत्रों का सर्वेक्षण कार्य सुरक्षा के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण था। समस्या यह थी कि इस कार्य को पूरा कैसे किया जाए।

इस कार्य को पूरा करने हेतु अंग्रेज़ों ने कुछ विशेष तरीके अपनाए। उन्होंने सर्वे करने वालों को छद्म वेश में तिब्बत में भेजने का निर्णय लिया। सर्वप्रथम सन 1812 में ईस्ट इंडिया कंपनी के मूरक्राफ्ट तथा हियरसी नामक दो युवा अंग्रेज़ अधिकारियों को हिन्दू फकीरों की वेशभूषा में पश्चिमी तिब्बत के प्राथमिक सर्वेक्षण हेतु भेजा गया। ये हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में काफी भीतर तक घुस गए। इन्हीं ने सर्वप्रथम भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र के भौगोलिक आंकड़े एकत्र किए। मूरक्राफ्ट तथा हियरसी द्वारा एकत्र किए गए आंकड़ों के आधार पर ही आगे चल कर भारत का त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण किया जा सका। इस प्रकार सन 1863 तक हिमालय क्षेत्र के अधिकांश भागों (दक्षिणी-पश्चिमी तिब्बत के उन क्षेत्रों का भी जो अंग्रेज़ों के लिए वर्जित थे) का मानचित्र तैयार कर लिया गया। इसके लिए अंग्रेज़ों को हिन्दू तीर्थयात्रियों साधुओं तथा फकीरों का वेश धारण करना पड़ा।

इस ढंग से तैयार किए गए मानचित्र में तिब्बत के सीमावर्ती दक्षिणी-पश्चिमी भाग को छोड़कर शेष क्षेत्र शामिल नहीं किए जा सके थे। समय बीतने के साथ तिब्बती अधिकारियों ने सीमा पर चौकसी बढ़ानी शुरू कर दी जिसके कारण अंग्रेज़ सर्वेक्षणकर्ताओं का वहां पहुंचना कठिन होता गया। वेशभूषा बदलकर तिब्बत में घुसने की उनकी चाल भी अब व्यर्थ साबित होने लगी। किंतु सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था कि तिब्बत के भूगोल तथा जलवायु के सम्बंध में पूरी जानकारी प्राप्त की जाए। तिब्बत के उस पार चीन तथा रूस जैसे बड़े-बड़े देश थे। इन देशों की ओर से भारत में अंग्रेज़ों के राज्य पर कोई खतरा न आए इसके लिए तिब्बत के सम्बंध में पूरी जानकारी प्राप्त करना अति आवश्यक था।

इस समस्या का समाधान ढूंढा टी.सी. मॉन्टगोमरी नामक एक अंग्रेज़ सर्वेक्षण अधिकारी ने। उसने एक योजना बनाई जिसके अनुसार भारतीयों को समुचित प्रशिक्षण देकर तिब्बत के गुप्त सर्वेक्षण हेतु भेजने का निश्चय किया गया। इन भारतीयों को सौदागरों तथा तीर्थ यात्रियों के रूप में उन क्षेत्रों में भेजने के बारे में सोचा गया जो अंग्रेज़ों के लिए वर्जित थे।

जो भारतीय इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए चुने जाते थे उन्हें विभिन्न सर्वे उपकरणों की कार्य प्रणाली की पूरी जानकारी प्रदान की जाती थी। साथ ही साथ ऐसे लोगों को नौपरिवहनीय खगोल विज्ञान की विभिन्न विधियों से भी परिचित कराया जाता था। इन सर्वेक्षकों को सिर्फ सर्वे की विधियों का ही प्रशिक्षण नहीं दिया जाता था, अपितु यह भी बताया जाता था कि अपना परिचय एवं उद्देश्य पूरी तरह गुप्त रखें। इन सर्वेक्षकों को उनके मूल नाम के स्थान पर कोड नाम दिए जाते थे। इन लोगों को ऐसे कपड़े दिए जाते थे जिनमें कुछ गुप्त जेबें बनी रहती थीं। साथ ही उन लोगों को तिब्बती लोगों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले प्रार्थना चक्र या जाप चक्र दिए जाते थे। पीतल के बने इन प्रार्थना चक्र या जाप चक्र के भीतर सर्वे नोट बुक को छिपाने के लिए गुप्त जगह बनी रहती थी। महत्वपूर्ण सूचनाओं को मौखिक रूप से याद रखने के लिए उन्हें कविताएं बनाने तथा रटने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। दूरी मापने के लिए उन्हें विशेष तरीके सिखाए जाते थे। जाप की मालाओं के मनकों (बीड्स) का उपयोग सर्वे के दौरान पहचान चिन्हों (मार्कर) के रूप में किया जाता था। अपने डग की लम्बाई की मदद से दूरी को सही-सही मापने का भी

प्रशिक्षण दिया जाता था।

उपयुक्त तरकीबों को सफलतापूर्वक एवं संतोषजनक ढंग से उपयोग में लाने वाला एक प्रमुख भारतीय सर्वेक्षक था नैन सिंह। एक व्यापारी के रूप में यात्रा करता हुआ वह नेपाल के रास्ते सन 1865 के अंत में तिब्बत के ताशिलहंपो नामक स्थान पर पहुंचा। वहां से उत्तर की ओर बढ़ता हुआ वह ल्हासा तक पहुंच गया। यहां पहुंचने के कुछ ही समय बाद वह तिब्बतियों द्वारा पहचान लिया गया। परन्तु यहां से भाग कर वह अन्य स्थान पर चला गया तथा अपना काम गुप्त रूप से करता रहा। जहां तक संभव हुआ नैन सिंह मुख्य मार्गों से दूर रहकर ही अपना सर्वेक्षण कार्य करता रहा। रात में वह अपनी झोंपड़ी की छत पर बैठकर कई प्रकार के खगोलीय आंकड़े एकत्र करता था। इन आंकड़ों के आधार पर ही उसने ग्लोब के ऊपर ल्हासा का सही स्थान निर्धारित करने में पहली बार सफलता प्राप्त की।

नैन सिंह ल्हासा से चल कर तिब्बत की प्रसिद्ध झील मानसरोवर तक जा पहुंचा। मान सरोवर की यात्रा के बाद वह भारत लौट आया। कुल मिलाकर उसने लगभग 1200 मील की दूरी तय की। यह समूची दूरी उसने पैदल चल कर मापी। इस प्रकार उसने तिब्बत के दक्षिणी भाग के व्यापारिक मार्गों के सम्बंध में महत्वपूर्ण सूचनाएं एकत्र करने का सराहनीय कार्य पूरा किया।

नैन सिंह के समान ही एक अन्य प्रमुख भारतीय सर्वेक्षणकर्त्ता का नाम था किशन सिंह। वह सन 1878 में अपने अभियान पर चला तथा ल्हासा की ओर जाने वाले तिब्बती एवं मंगोल व्यापारियों के कारवां में शामिल हो गया। यह कारवां चीनी तुर्किस्तान की ओर जा रहा था। किशन सिंह का उद्देश्य था तिब्बत के उत्तरी भाग की ओर जाने वाले रास्ते का विस्तृत सर्वेक्षण करना। परन्तु यह एक बहुत ही कठिन काम था। रात को खगोलीय अवलोकन करते समय जब संयोगवश कारवां का कोई आदमी देख लेता था तो उसे बहाना बनाना पड़ता था कि वह भी एक व्यापारी है, किंतु तारों को देखने में उसे आनंद आता है। यह एक सुखद संयोग था कि कारवां के सब लोग पैदल ही चल रहे थे, अतः उसे डगों से दूरी मापने में कोई कठिनाई नहीं हुई। परन्तु एक स्थान पर कारवां के सरदार ने सभी लोगों को आदेश दिया कि वे अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो जाएं, क्योंकि उस क्षेत्र में दस्युओं का काफी डर रहता था। अब किशन सिंह के सामने भी घोड़े पर चढ़ने के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं बचा था। परन्तु समय के अनुसार किशन सिंह अपनी बुद्धि का उपयोग करना जानता था। उसने अपने घोड़े के डगों को गिनना शुरू कर दिया। लगभग 230 मील की दूरी उसने इसी प्रकार तय की।

व्यापारियों के कारवां के साथ चलता हुआ किशन सिंह गोबी मरूस्थल के पश्चिमी सिरे पर स्थित तुन्हवंग नामक स्थान पर पहुंच गया। इस स्थान से वह तिब्बत वापस लौटा। इस लंबी यात्रा के सिलसिले में वह पूर्वी क्षेत्र के अधिकांश नगरों से होकर गुज़रने में कामयाब हुआ। अंत में सन 1882 में कई महत्वपूर्ण स्थानों का सर्वेक्षण कार्य पूरा कर वह भारत लौट आया। इस संघर्षपूर्ण यात्रा में उसने हज़ारों मील की दूरी तय कर ली थी तथा कई अज्ञात स्थानों का सर्वेक्षण कार्य संपन्न कर लिया था।

अंग्रेज़ों द्वारा तिब्बत के सर्वेक्षण कार्य के लिए नियुक्त किए गए भारतीयों में एक अन्य प्रमुख नाम शामिल है किंतुप का। परंतु सर्वे कोड में उस व्यक्ति का नाम रखा गया था के.पी.। वह सन 1879 में दक्षिणी तिब्बत में स्थित सांगपो नाम की नदी के सर्वेक्षण के उद्देश्य से भेजा गया था। यात्रा के प्रारम्भ में कुछ समय तक लोगों को अपना परिचय एक लामा के नौकर के रूप में देता रहा जिसके कारण पहचान लिए जाने का खतरा कुछ कम रहा। परन्तु इसकी वजह से शीघ्र ही एक बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गई। किंतुप के मालिक उस मंगोल लामा ने उसे एक तिब्बती लामा के हाथों बेच दिया। वह तिब्बती लामा सदा उस पर चौकसी रखता था। इस तिब्बती लामा के अधीन लगभग दो वर्षों तक बंधुआ रहने के बाद किसी प्रकार वह भागने में सफल हो गया। लामा के पास से भागने के बाद वह सांगपो नदी की ओर चल पड़ा। लगभग एक वर्ष तक वह सांगपो का सर्वे करता रहा। अंत में अपना काम पूरा कर वह सन 1883 में भारत लौटा। इस बीच उसने तिब्बत के सर्वेक्षण का महत्वपूर्ण काम पूरा कर लिया था। ***(स्रोत फीचर्स)***